The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 8 | August 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

21 वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिक आतंकवाद

राजकुमार
शोधार्थी
गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बाँसवाड़ा

दुनिया भर में हुए धार्मिक विवाद जिन्होंने सांप्रदायिकता का रूप ले लिया और उसकी वजह से लाखों निर्दोष लोग मारे गए तथा वही विवाद हमेशा के लिए मनुष्य -मनुष्य के बीच नफरत की दीवार की तरह आज भी खड़ा है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में लेखक ने समय को न्यायाधीश बनाया है और समय की अदालत में खड़ा करके अपने वक्त में बरती गई सांप्रदायिकता का स्पष्टीकरण माँगा है । ऐसी ही एक कहानी कितने पाकिस्तान उपन्यास में आई है। रेतपरी और बूटा सिंह की। विभाजन के समय एक मुस्लिम लड़की मारकाट से बचकर बूटा सिंह के घर पहुँच जाती है। बूटा सिंह सिख धर्म का अनुयायी है और अभी विवाह भी नहीं किया। उसने लड़की की रक्षा की और विवाह कर लिया और एक बच्चा भी पैदा हो जाता है लेकिन विभाजन के उपरांत दोनों देशों के बीच सहमति बनती है कि खोये हुए लोगों को अपने – अपने वतन भेजा जाए। उस वक्त रेत परी पाकिस्तान नहीं जाना चाहती। वह अपने पति और बच्चे के साथ ही रहना चाहती है लेकिन सरकारी हुकूमत के आदेश के अनुसार उसको जबरदस्ती पाकिस्तान भेज दिया जाता है क्योंकि वह मुसलमान है तो भारत में नहीं रह सकती। यह विभाजन किया गया धर्म के आधार पर और जब कोई उसको स्वीकार न करके आत्मीय सम्बन्धों के हवाले से एक जगह रहना चाहे तो रहने नहीं दिया जाता है। यह सांप्रदायिक नफरत की चरम सीमा है जहाँ धर्म अलग होने मात्र से माँ को अपने बच्चे से अलग कर दिया जाता है।

'कितने पाकिस्तान' में पाकितान को केवल प्रतीक बनाया गया है लेकिन लेखक इतिहास में हुई घटनाओं को भी सामने लाता है और समय की अदालत में उस प्रक्रिया को समझने की कोशिश करता है कि जो धर्म आपस में मिलकर एक सामासिक संस्कृति का निर्माण कर रहे थे उनको अचानक क्या हो गया। रोहिणी अग्रवाल ने लिखा है कि "उपन्यास में पाकिस्तान प्रतीक है उस अलगाववादी मानसिकता का जो नफरत से हिंसा और हिंसा से आतंक फैलाकर लगातार अपने निहित स्वार्थ पूरे करती चलती है । इसलिए आज समूचे विश्व में पाकिस्तानों की संख्या तेजी से बढती जा रही है। पाकिस्तान यानी 'मजहब के नाम पर लूटा गया इलाका' जिसे 'मुल्क' कहा जाता है। लेखक पाकिस्तान नामक देश और उसकी एकता को अहमियत देने का हामी है लेकिन 'पाकिस्तान' नाम के उस जज्बे को गलत और खतरनाक मानता है । जो छूत के रोग की तरह तब तक

पाकिस्तानों की शृंखला को खड़ी करता रहेगा जब तक धर्म, नस्ल, जाति और दुनिया की पहली शक्ति बनने का नशा नहीं टूटता, जब तक सत्ता और वर्चस्व की हवस नहीं छूटती। उपन्यास इस विकृत मानसिकता की जड़े तलाशने के लिए इतिहास के अतिरिक्त हर सभ्यता की पुरा कथाओं और मिथकों का भी विश्लेषण करता है।"[1] मुशीर साहब के साथ अदीब के संवाद में यह धार्मिक नफरत प्रकट होती है। मुशीर जब अदीब की अदालत में बुलाया जाता है और उसको दर्द सुनाने के लिए कहा जाता है तो वह स्वयं की पहचान को ही सही से नहीं बता पाता क्योंकि धर्म के कारण उसका मुल्क और अस्तित्व दोनों ही खतरे में पड़ गए हैं। अदीब ने पूछा – "तो मुशीर साहब आप कश्मीरी पंडित हैं ? अदालत ने जानना चाहा। जी नहीं ! मैं मुसलमान हूँ...पाँच वक्त की नमाज पढ़ता हूँ। नमाज पढने ही जा रहा था, जब मुझे किडनैप किया गया और दूसरे दिन मारा गया। हुजुर आपने ठीक फरमाया था कि वक्त को पीछे ले जाने से पाकिस्तान बन जाता है।"[2] धार्मिक दुश्मनी यह नहीं देखती कि जिस इन्सान को मारा जा रहा है उसको कोई दोष है या नहीं। वह धर्म के झूठे अहं के चलते केवल हिंसा ही कर सकती है। इसी विभाजन का शिकार एक सिख धर्म का अनुयायी अदालत में कहता है कि मुझे भी घड़ी को पीछे ले जाने के लिए कहा गया। यह संवाद देखिए –

"अपने फफोले चाटता हुआ एक सिख मुर्दा दहाड़ पड़ा – मुझे तो शोपियाँ में मारा गया..

- मैं खालिस्तानी नहीं हूँ...मैं तो कश्मीरी हूँ...लेकिन मुझे फिर भी मारा गया। मुझसे कहा गया कि अपनी घड़ी का वक्त बदलों...इसे पीछे करो और सुइयों को पाकिस्तानी वक्त पर लाओ !
- क्या वक्त को पीछे करने से पाकिस्तान बन जाता है ? अदालत ने पूछा।
- मुझे नहीं मालूम। पर मुझसे कहा गया कि सिर्फ हरी पगड़ी पहनों और झटके की दुकान बंद करो...कश्मीरी पंडितों से कहा गया – पंडित यहाँ से भाग जाओ, पंडिताइन को छोड़ जाओ ! उनमें से कई एक भागते हुए आपकी अदालत में आ रहे हैं।"[3]

यह सब परिस्थितियाँ पैदा कैसे हो गई कि मानवता के लिए बनाये गए धर्म इतनी घृणा और नफरत पैदा करने लगे कि इंसानियत की कोई कीमत ही नहीं रहे ? जीवन मूल्य पहले और उसके बाद धर्म आया और जब धर्म सांप्रदायिक हुआ तो पहले मानव मूल्य मरे और उसकी जगह धर्म ने दिलों में नफरत घोल दी। "नफरत ही अब आदमी को पहचान देती है। नफरत से ही आदमी और उसके जातीय समुदाय पहचाने जाने लगे हैं। नफरती एकता के लिए अतीत काम करता है। अतीत का दंश, गौरव और वे स्मृतियाँ जो कसकती, दुखती और रिसती है...इतिहास अपने को ठीक करने की दृष्टि दे सकता है, पर इतिहास को भी अतीत के अग्निकुंड में झोंक दिया जाता है। इतिहास का विश्लेषण, उसकी सामाजिक व्याख्या मनुष्य की घृणा को तर्क से शमित करती है, पर अतीत तर्क की पद्धति को स्वीकार नहीं करता, वह केवल आंशिक सत्यों को स्मृति की कहानियों में बदल देता है और उसे सदियों जीवित रखता है। नफरत एक ऐसा स्कूल है जिसमें पहले खुद को प्रताड़ित, अपमानित और दंशित किया जाता है...उसे घृणा की खाद से सींचा जाता है और तब उसकी स्मृति को एकात्म करके प्रतिशोध के नुकीले हल से जोतकर हमवार किया जाता है। इसलिए घृणावादियों के तर्क इकहरे और एक से होते हैं...उनके पास अधिक बातें नहीं होती। वे हजारों लाखों मुखों से एक ही स्वर में बोलते हैं, एक से प्रश्न उठाते हैं, एक सी

दलीलें देते हैं...यही उनकी एकता की पहचान बन जाती है।"[4] यह नफरत केवल हिंदुस्तान की कहानी नहीं है। जहाँ – जहाँ भी धर्मों में कट्टरता बढ़ी है तब से ऐसा ही होता आया है। यूरोप हो, अमरीका हो या अफ्रीका हो; कोई भी अंधी धार्मिक नफरत से नहीं बच पाता है। हर कोई निर्दोष मृत्यु की ओर धकेला जा रहा है। उपन्यासकार ने जिस गिलगमेश को अमृत की खोज के लिए पाताल की गहराइयों की ओर भेजा है वह न जाने कब तक प्रेम रुपी अमृत को ला पाएगा। गिलगमेश की यह अमृत खोज ही दुनिया को नफरत से बचा सकती है वरना तो बाबर और ओरंगजेब के नामा के गड़े मुर्दे उखाड़े ही जाते रहेंगे और दुनिया में कत्लेआम होता ही रहेगा। धर्म मानसिक शांति की आयोजना के लिए निर्मित किए गए लेकिन कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए राजनीति और पूँजी के साथ मिलाकर जनता पर ऐसा थोपा है जिससे मनुष्य – मनुष्य के हृदयों में बिखराव उत्पन्न हो और एक सी मनुष्यता पैदा न हो सके ताकि वे लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति करते ही रहे।

सांप्रदायिकता कैसे धर्म के बीच से ही उत्पन्न होती है और कैसे वह शाश्वत नफरत में बदल जाती है जिसका दंश आने वाली कई पीढ़ियाँ भुगतती रहती है – इसी कहानी का बखान 'कथा सतीसर' में हुआ है। अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत के लोगों के बीच आपसी धार्मिक सांप्रदायिकता नहीं थी। शासकों द्वारा धर्म के आधार पर किए जाने वाले अत्याचार प्रत्येक धर्म के शासन में थे। कश्मीर घाटी में हिन्दू-मुस्लिम नफरत का व्यापार जिसमें धर्म के आधार पर नफरतें बढ़ गई वह भी बहुत पुरानी नहीं है। जब पहली बार धर्म के नाम पर नेशनल कांफ्रेंस का जन्म होता है तब जाकर हिन्दू - मुस्लिम सांप्रदायिकता की नींव कश्मीर घाटी में पड़ती है। "बाहर उन दिनों यों भी बदलाव की लहर के साथ तनाव बढने लगे थे। अब्दुल कादर पठान के भड़काऊ भाषणों से मजहबी दंगों की आशंका सूँघ, सरकार ने उसे और अनेक हुडदंगियों को बंदी बना दिया था। तेरह जुलाई को दंगाइयों ने सेंट्रल जेल पर धावा बोल दिया और पुलिस पर पत्थर बरसाए। पुलिस ने लाठी चार्ज किया, गोली चलाई। फिर क्या था कि उत्तेजित भीड़ विचारनाग, महाराजगंज, आलिकादल आदि इलाकों में घुस गई और वहाँ दहशत फैला दी। गैर मुस्लिम लोगों के घर जला दिए, दुकाने लूटीं, जो कभी न हुआ, बस इस बार हो गया। मुसलमान शासकों के समय, गैर मुसलमानों पर जो कयामतें बरपा हुई, वे शासकों के द्वारा हुई थीं, उसमें जनता ने साथ नहीं दिया था। पर इस बार एक भाई ही दूसरे भाई का दुश्मन हो गया। वादी में मुस्लिम कांफ्रेंस की नींव क्या पड़ी कि बकौल महजूर, दूध और शक्कर की तरह मिल – जुलकर रहते हिन्दू मुस्लिम भाइयों के बीच अदृश्य दीवारें खड़ी हो गई।"[5] नफरत की यह दीवारें चौथी पीढ़ी में आते आते इतनी बढ़ गई कि कश्मीरी पंडितों को कश्मीर घाटी से मारकाट करके भगा दिया गया। 9 वे दशक की यह मारकाट राजनीति प्रेरित तो हमेशा से ही रही लेकिन सामान्य जनता के दिलों में पलने वाली नफरत और घृणा इतना भयंकर रूप लेगी यह स्वयं शेख अब्दुला ने भी नहीं सोचा होगा। वह कश्मीर घाटी का राजा बनना चाहते थे क्योंकि हिन्दू शासक कबाइलियों के हमले के बाद भाग खड़ा हुआ था। शेख अब्दुला उसी का फायदा उठाकर स्वतंत्र कश्मीर के नारे पर काम करने लगा जिसका परिणाम हुआ कि सांप्रदायिकता की दीवारे और मजबूत होती गई।

लेखिका वर्तमान पर आने से पूर्व नीलमत पुराण के हवाले से यह भी निर्देशित करती है कि पहले घाटी में अमन चैन था। धर्म और मजहब के झगड़े बिलकुल भी न थे। यहाँ तक की उपन्यास की नायिका लल्ली के जन्म के बाद माँ पंडितों के घर में आया का काम करने वाली खुर्शीद ने ही अपने स्तनपान करवाकर लल्ली को बड़ा किया – "सरस्वती की तीसरी संतान लल्ली ! दो तो आधे – अधूरे ही जाया हो गए। लल्ली पेट चीरकर जन्मी तो माँ ने साल भर के लिए बिस्तरा पकड़ लिया। बाल्टीभर खून बहा। मुट्ठीभर पसलियों में समझों, साँस की आवन-जावन भर ! कृष्णजू गुल्कोज से पानी पिलाते। बेटी को दूध नसीब ही न हुआ। सरस्वती की सास ने अशी दाई से सलाह ली और अशी ने खुर्शीद को भेजा। वली साल भर का हो गया था। खुर्शीद को एक – एक वाकया याद है। कटोरा भर दूध भाट खाता था। खुर्शीद की दूधभरी छातियों से कुरती भीगी रहती, सरस्वती ने कैसी 'जार – पार'[6] नजरों से देखा था – 'यह नन्हीं जान तेरे आसरे है खुर्शी बेनी। मैं तो जन्मभर देने की माँ, इसे अपनी कोखजायी समझना।"[7] खुर्शीद मुसलमान होते हुए भी कभी यह नहीं सोचा कि मैं एक हिन्दू बच्ची का पालन क्यों करू और न ही बच्ची के माता-पिता और परिवार ने कभी इसका विरोध ही किया लेकिन उसी खुर्शीद का बेटा वली सांप्रदायिक हो जाता है और हिंसा में शामिल हो जाता है। रहमान तांगे वाला जो कभी दंगों के समय भी गर्भवती लल्ली की जान बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार था वह आज हिन्दुओं से नफरत ही कर बैठा। "सन् 1947 में हिंदुस्तान का विभाजन होकर भारत और पाकिस्तान दो मुल्क तो बन गए। धर्म के नाम पर हर देश विभाजन के कारण हिन्दू मुसलमानों के बीच दरार पैदा हो गई। सांप्रदायिक दंगों और आतंक भरे वातावरण ने वहाँ की जनता की नियति को बदल दिया। लोगों के मन का आपसी प्रेम घृणा में बदल गया। सदियों से एक साथ रहते आये हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ने लगे। कश्मीरी पंडितो को कश्मीर छोड़कर जाना पड़ा। कश्मीर की पूरी वादी को आतंक ने अपने साए में ले लिया। अल्पसंख्यकों और महिलाओं पर अत्याचार होने लगे। लोगों को शरणार्थी बनकर प्रदेश के बाहर भी अपमान, घृणा और अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ा।"[8] 'कथा सतीसर' उपन्यास में दिखाया गया है कि एक पंक्ति में खड़ा करके लोगों को गोलियाँ मारी गई। कई सारे परिवार ऐसे हैं जिनका वंश ही खत्म हो गया। घर में कोई नहीं बच सका। उपन्यास की प्रमुख पात्र कात्या की सहेली तुलसी के सारे परिवार वालों को गोलियों से उड़ा दिया गया। उसके साथ भी बलात्कार किया गया जिससे वह जीवन भर के दर्द और पीड़ाओं से घिर गई। 'कथा सतीसर' का यह संवाद तुलसी के साथ हुई घटनाओं की भयावहता को उजागर करता है – "सबसे पहले सरपंच के घर पर हमला हुआ। जमीन जिरातवाले थे। जवान बहू बेटियाँ। सब खत्म हो गया। मिट्टी तक न बची। दामाद गया। उसके दो बेटे ! हाय, हाय फूल से बच्चे काट डाले। यह अभागी इस नन्हीं जान को लेकर भाग आई। धर्म भ्रष्ट हो गया लड़की का। किसे मुँह दिखाएगी।"[9] उपन्यास में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि धर्म को सांप्रदायिकता में बदलने का सबसे बड़ा कार्य किया मदरसों ने जिन्होंने तालीमी शिक्षा की शुरुआत की और बताया कि धार्मिक श्रेष्ठता ही सब कुछ है। सिद्धांतों को जीवन मूल्यों, मानवीयता और नैतिकता से ऊपर रखने की शिक्षा ने कश्मीर घाटी में धार्मिक वैमनष्यता पैदा की जिसके कारण पिछले सौ सालों में में कई पीढ़ियाँ बर्बाद हो गई। अर्जुन ने बच्चों से जब मजहबी जज्बाती बातें सुनी तो दंग रह गया कि इन छोटे बच्चों के मस्तिष्क में यह कौन डाल रहा है – "यह

मस्जिदों में कैसे मदरसे खुले हैं, जो छोटे – छोटे बच्चों को इस्लाम के नाम पर लड़ने की बातें सिखाते हैं ? कश्मीर, भारत, चीन, ईरान से घिरा है, सिखाकर भारत से अलग होने की बात जेहन में भर देते हैं। कार्तिकेय ने सुना तो था कि जमात – ए – इस्लामी गुट ने मस्जिदों – मकतबों में इस्लामी तालीम शुरू कर दी है। पाकिस्तान के प्रिचर्स आते हैं और छोटे – छोटे बच्चों को 'निजाम – मुस्तफा' की खूबियाँ समझाई जाती है। ...जमात ए इस्लामी ने बच्चों के कच्चे मस्तिष्क को निशाना बना लिया था।"[10] धर्म का यह स्वरूप ही आगे चलाकर सांप्रदायिक सोच में परिवर्तित हो जाता है, जिसका दंश आने वाली कई पीढ़ियाँ झेलती रहती है। आजादी से पूर्व मुस्लिम लडकियाँ बुरका नहीं पहनती थी लेकिन बाद में जाकर बुरका न पहनने की एवज स्त्रियों के साथ बलात्कार और मारपीट की घटनाएँ हुई। उपन्यास में इसी बुर्के के विरोध की शिकार नसीम का जिक्र आता है जिसका अपहरण कर लिया जाता है क्योंकि उसने बुर्का पहनने से इंकार कर दिया था। जिहादी उसको उठा ले जाते हैं और कई दिनों तक मारपीट के बाद एक जिहादी उससे शादी भी कर लेता है। "नसीम गाय के बाड़ो, भूसा – कोठरियों और अस्तबलों में खुद को नुचते – कूटते देख छटपटाती रही। अलमूनियम की मैली पिचकी प्याली में, कभी साग भात, कभी मुर्ग की बोटी, उसके आगे डाल दी जाती। उसे उबकाई आ जाती। जख्मी कुतिया, आवाज किंकियाती, उसकी आँखों के आगे से हटती ही नहीं। कई दिन उसने अनशन किया। उसकी अंतड़ियाँ एंठने लगी। पेट के नीचे तीखें मरोड़ उठ, जिस दिन सूखा अकड़ा भात उसके पेट में उतरा। अजीब सा गुस्सा भी उसकी नसों में तड़कने लगा। उसके अंदर वहशियाना हरकते करने की जिद उठती, लेकिन उसके सख्त पंजों में कसी – फंसी वह बेहरकत पड़ी रहती। किसी उम्मीद के बिना, कि कोई उसे इन पंजों से निकाल लेगा। वह जानती थी, कि न तो वह किसी मंत्री-संत्री की बेटी है और न उसके घरवाले किसी जेहादी ग्रुप से ताल्लुक रखते हैं। उसकी मौत तय थी। बकौल नसीम – 'किसने क्या बिगाड़ा किसका ? बीएस उन्हें औरत चाहिए थी, बहाना यही था, कि मैं पर्दा नहीं मानती। वीमंस वेलफेयर सेंटर में लड़कियों को गुमराह करती हूँ। मैंने मना करने पर भी साइकिल चलाना नहीं छोड़ा। मैं बागी हूँ। पहले – पहले मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की। पर वे सिर्फ बम बारूद और कलिशनिकोव की जबान जानते थे। उनके मसूड़े तक आदम खून से तर थे।"[11] जब ऐसा धार्मिक विद्वेष समाज में फैलता है तो सबसे ज्यादा शिकार महिलाओं को ही बनाया जाता है। धार्मिक सिद्धांतों में पहले से ही स्त्रियों को सम्मानित नजरों से नहीं देखा गया है। और जब ऐसा कोई मौका मिलता है तब धर्म भी आड़े नहीं आता। वे यह भी नहीं देखते कि स्त्री उनके खुद के धर्म की है या अन्य धर्म की। तब वह धर्मान्धता में बदलती है और उस सांप्रदायिक क्रूरता की शिकार होती है महिलाएँ। 'कथा सतीसर' में दोनों धर्मों की स्त्रियों पर होने वाले शोषण और अत्याचारों का चित्रण मिलता है। जेहादी किसी भी घर के आगे मेंहदी का पैकेट रख जाते। इसका मतलब था कि वे आपकी बेटी से निकाह चाहते हैं और अगर तैयार नहीं हुए तो उसका अपहरण कर लिया जाएगा। "वहाँ कमला – विमला के वक्ष काटकर, कान में डेजहोरू की तरह लटकाये जा रहे थे, बांडीपुरा के तुक गाँव की युवती को भोगने के बाद, जिन्दा ही आरी से दो हिस्सों में काटा जा रहा था।"[12] यह सब अत्याचार धर्म को बचाने के नाम पर कश्मीर में हो रहा था। डॉ. रमेश दवे इन दो कौमों के बीच उभरी सांप्रदायिकता का चित्रण करने वाले उपन्यास के बारें में लिखते हैं कि "कथा सतीसर कश्मीर की यातना, यंत्रणा और सदियों से एक साथ

रहती दो कौमों के बीच संदेह और अविश्वास की ऐसी कथा है, जो कश्मीर की सांस्कृतिक मृत्यु के विरूद्ध, चन्द्रकान्ता ने सतत् संघर्ष की भाषा में रची है, एक ऐसी कथा, जिसकी अधिष्ठान भूमि महाभारत के पूर्व की है, जिसकी कथाभूमि अनेक आख्यानों के महाविलय से निर्मित है और जिसकी भाव संवेदन भूमि मनुष्यता के उस घोर अवमूल्यन से काँप रही है जिसमें धर्म, जाति, स्मृति, संस्कृति और संवेदन जैसे शब्द निरर्थक और निर्दयी हो गए हैं...! कथा सतीसर स्थानीयता का भूगोल न होकर पीड़ा, व्यथा, जुल्म, ज्यादती, आदि के विरूद्ध संवेदन का भूमंडलीकरण है।"[13]

'एक गंधर्व का दुस्वप्न' उपन्यास में भी एक कलाकार की पीड़ा को दिखाया गया है जिसने जीवन में दो दौर देखें जिसमें एक तरफ हिन्दू-मुस्लिम एकता थी अंग्रेजों के खिलाफ तो दूसरी तरफ गाँधी जी की हत्या होने के बाद कैसे हिन्दू-मुस्लिम एक दूसरे के दुश्मन बन गया और आजादी के बाद राम जन्म भूमि विवाद इतने निम्न स्तर तक गिर गया कि इश्तियाक बाबू जो कि एक कलाकर ही होते हैं उनके एक सम्बन्धी को अयोध्या की एक कब्र में दफनाने तक नहीं दिया जाता है और इश्तियाक उसके बाद एक भारी और बोझिल मन लिए पाकिस्तान चले जाते हैं जबकि बँटवारे के वक्त उन्होंने भारत में रहना ही चुना था। फ़ैजाबाद में ही एक टीकापाली नामक जगह पर एक सिख धार्मिक गुरु रहते थे जिन्होंने जब मुसलमान मुर्दे न दफनाने देने के विरोध में अनशन किया और समाज की नजरों से अछूत हो गए। उपन्यास का नायक जो की इसराज बजाने का उस्ताद था वह बाबाजी के पास जाया करता था। भवनाथ शुक्ला के हवाले से कहा गया है कि नानक देव के समय की एक पुस्तक 'आईन – ए – टीकापाली' जो कि फ़ारसी भाषा में लिखी गई थी। एक भगत ने जब इसका अनुवाद किया तो उसकी विषय वस्तु को भयंकर सांप्रदायिक रंग दे दिया। "आईन – ए – टीकापाली का एक खानदानी भगत ने हिंदी में अनुवाद किया था। लेकिन अनुवाद ने केवल लिपि बदली, भाषा नहीं। ऐसी टूट – फूट थी कि पता ही नहीं चलता कि गलती भाषा की है या लिपि की। बकौल आईन – ए – टीकापाली श्री गुरु नानक देव जी निरंकारी का जन्म ठीक उस जमाने में हुआ जबकि हिन्दुओं की सल्तनत में जुबान और इस्लाम का उरूज इकबाल था। तेग अस्फहनी पर अफगन्द : कौम के खून से रंगी जाती थी, उनका सर जर्दक और खून पानी तसव्वुर किया जाता था; के वक्त तक आते - आते भगत खुद ही इस भाषा से घबरा गए और बेटे को यह हिदायत दे गए कि उनके मरने के बाद वह अनुवाद का अनुवाद करवाए। तब इस इतिहास के दूसरे और अंतिम संस्करण में लिखा गया कि उस वक्त अस्फहनी तलवार लाचार कौम के खून से रंगी जाती थी। उसका सर गाजर मूली की तरह काटा जाता था और खून पानी की तरह बहाया जाता था। इसी सरल सुगम हिंदुस्तानी में आगे लिखा गया कि जब देखो तब सैंकड़ों सिर ला इलाह इल्लिललाह पढ़कर सीधे न्यौछावर किए जाते थे। हिन्दू पुस्तकालय लूट लिए जाते थे और पवित्र किताबों को दियासलाई दिखाई जाती थी। त्राहि – त्राहि मची हुई थी फिर भी –

'सीस जाए तो जाए

धर्म नहीं देना

अगम अरूपाय जगत से

साथ कुछ भी लेना’

मगर हिंदुस्तान की फिलासफी पसंद जमीन इस जोर जबरदस्ती के मजहब को स्वीकार न करती थी। एक तो तलवार का तर्क ही इसकी असली कमजोरी थी उसके ऊपर स्वर्ग और नरक के किस्से, हूर व गिलमा के वादे निहायत मामूली सौदेबाजी मालूम होते थे।”[14] इतिहास की किताबों के साथ ही नहीं कथा कहानियों के साथ भी इस प्रकार की छेड़छाड़ समाज में सांप्रदायिकता को बढ़ावा ही देती है। उपन्यासकार दोनों धर्मों की सामासिक संस्कृति को बिगाड़ने वाले तत्वों को चिह्नित करने का प्रयास करता है। बाबरी मस्जिद, बाबर, औरंगजेब इत्यादी के बहाने धार्मिक सांप्रदायिकता बढ़ाने वाली शक्तियों के प्रतिरोध का यही तरीका है कि जो सामासिक है उसकी बात की जाए। भवनाथ एक कलाकार होने के नाते जीवन भर इसी पर जोर देता है। वे सामासिक संस्कृति में ‘जे सियाराम’ के नारे को मान्यता देते हैं तो ‘जय श्री राम’ को सांप्रदायिक सौहार्द्र बिगाड़ने वाला मानते हैं।

‘दस बरस का भँवर’ उपन्यास में रवीन्द्र वर्मा 1992 के बाबरी विध्वंस और 2002 के गुजरात दंगों के बीच के समय की संवेदना को पकड़ने की कोशिश की है। उन्होंने इन दस सालों में धर्म, राजनीति और व्यक्ति को मिलाकर एक नया रूपक गढ़ा है। बाँके बिहारी अपने चार पुत्रों को चार जगह पाता है जो अपनी जगह सब सही हैं लेकिन समय और स्थान के हिसाब से एक ही आदमी एक जगह धर्म को बचाता दिखता है तो उसी को दूसरी जगह खड़ा करने पर वह सांप्रदायिक दंगों का स्रोत बनता दिखाई देता है। बाँके बिहारी का बड़ा बेटा अमरीका में हिन्दू धर्म के उत्थान के लिए जो चंदा देता है वही चंदा भारत में आकर गुजरात दंगों में मुसलमानों के कत्ल करने के काम आता है। वही सबसे छोटा बेटा बेरोजगार होने के कारण अपनी प्रेमिका का बलात्कार कर देता तो बाँके बिहारी को लगता है कि गुजरात दंगे हो या बाबरी विध्वंस सब एक व्यक्ति रतन में छुपे हुए हैं। उपन्यासकार धर्म और सांप्रदायिकता का ऐसा रूपक खड़ा करते हैं कि अंत में नायक बांके बिहारी को शहर छोड़कर अपने गाँव में जाना पड़ता है जहाँ उसका बचपन बीता और उन पलो को याद करता है जब जवानी में वह घास पर अपनी प्रेमिका के साथ सुस्ताता था।

निष्कर्षत: इन चार उपन्यासों को पढने के बाद यह समझ आता है कि सांप्रदायिकता केवल बाहरी भर काट मात्र ही नहीं है। वह सूक्ष्म रूप से मनुष्य के दिलों में पैठी हुई होती है जो उचित समय पाकर प्रकट हो जाती है। यह सांप्रदायिकता धर्मों को कट्टरता और पाखंड का रूप देने से प्रकट हुई है जो कि सोची समझी साजिश होती है और उसके पीछे दुनिया के अनेक कारोबार चलते हैं।

सन्दर्भ:

---

[1] सतीश कुमार : हिंदी उपन्यास और सांप्रदायिकता, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्युटर्स, 2017, पृ. 277

[2] कमलेश्वर : कितने पाकिस्तान, राजपाल एंड संस, 2016, पृ. 66

[3] वही, पृ. 65-6

[4] वही, पृ. 93-4

[5] चन्द्रकांता : कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, 2007, पृ. 51

[6] अनुनयभरी नजर से देखना

[7] चन्द्रकान्ता : कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, 2007, पृष्ठ 58

[8] सतीश कुमार : हिंदी उपन्यास और सांप्रदायिकता, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्युटर्स, 2017, पृ. 242

[9] चन्द्रकान्ता : कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, 2007, पृ. 212

[10] वही, पृ. 428-9

[11] वही, पृ. 525-6

[12] वही, पृ. 532

[13] वही, फ्लैप से उद्धृत

[14] हरि चरण प्रकाश : एक गंधर्व का दु:स्वप्न, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 46-7